

हिन्दी भाषा और मैं लीना मेहदले

हिन्दी भाषा से मेरा लगाव ऐसा ही है जैसा किसी लाड़ली बेटी का अपनी माँ से होता है। लाड़ली बेटी को अपने लाडले होने पर गरुर होता है, वह माँ से मित्रता का नाता भी जोड़ लेती है। माँ की अच्छाइयों को अधिक मननशीलता से परख सखती है और माँ के समर्थन में डट भी जाती है। बस कुछ वैसा ही।

इसका एक कारण यह भी था कि स्कूल में हिन्दी में हमेशा सर्वाधिक अंक पाना और उसका कारण शायद था कविताएँ एवं उदाहरण रटने की धुन। पर हिन्दी के उत्तर पत्र या निबन्ध स्पर्धा में उनका खुलकर उपयोग करना। जहाँ तक हिन्दी का सवाल था बचपन के पहले दस वर्ष तक मध्य प्रदेश की हिन्दी बोलने सुनने के बाद बिहार की हिन्दी अपने आप में एक अद्भुत परिवर्तन था। साथ ही बिहार की क्षेत्रीय बोलियाँ जैसे मैथिली, भोजपुरी, मगधी और साथ में नेपाली और बंगाली सुनने को मिली। कविताएँ और दोहे रटने की धुन ने ब्रज और अवधी से परिचय कराया और उधर उर्दू गज़लों ने उर्दू से। इन सबका ताना-बाना जुड़ता रहा हिन्दी से। कॉलेज के बाद सांसारिक जीवन में नौकरी, तबादले इत्यादी ने भारतभर नचवाया तो इस पट में और भी कई क्षेत्रीय बोलियाँ जुड़ती गईं जैसे राजस्थानी, पहाड़ी, मारवाड़ी, हरियाणवी, पंजाबी, गुजराती और ओड़िया। इनका हिन्दी से रिश्ता भी मुझे वैसा ही मालूम पड़ता है जैसे दूध और पानी का, एक दूसरे में घुलमिल जाने वाला। इसके अलवा हिन्दी में एक और मनमोहक छटा लाई है दक्षिण भारतीय लोगों ने। उनकी बोलचाल की हिन्दी में एक गजब की मिठास होती है। भले ही अन्य कोई उसे टूटी-फूटी कहे। उधर असमिया हिन्दी, मुम्बईया हिन्दी, लखनवी अदब वाली हिन्दी, बंगाली हिन्दी, ओड़िया हिन्दी, हैदराबादी हिन्दी या निजामी हिन्दी के भी अपने-अपने अनूठे रंग हैं। इन सभी ने मिलकर हिन्दी का पट बिलकुल रंग-बिरंगा इन्द्रधनुषी कर दिया है।

आज भारत की एक अरब की जनसंख्या में करीब चालीस करोड़ लोग किसी न किसी क्षेत्रीय भाषा का पुट चढ़ाकर हिन्दी बोलते हैं और करीब अस्सी करोड़ लोग हिन्दी को समझ लेते हैं। अर्थात् विश्व की अबादी में हर आठ में एक व्यक्ति हिन्दी को समझता है। इतनी सर्वव्यापकता अंग्रेजी, और चीनी भाषाओं को छोड़ और किसी भी भाषा में नहीं है फिर भी हम यूनो (संयुक्त राष्ट्रसंघ) में इस भाषा को अन्तर्राष्ट्रीय मान्यता प्राप्त भाषा बनाने के प्रयत्नों पर जोर नहीं देते, यह एक दुखद बात है।

एक दुखद बात और है स्वतंत्रता आन्दोलन के समय हिन्दी की मान्यता इतनी अधिक बढ़ गई थी कि देश के दूर-दूर के कोने-कोने में हिन्दी प्रचारिणी सभा या तत्सम कई संस्थाएँ अपना-अपना योगदान हिन्दी के लिये दे रही थीं। लेकिन पिछले पचास वर्षों में यह पूरा प्रयास तेजी से शून्यवत् हुआ है और इसका अपश्रेय दो तरफ जाता है, पहले तो देश के वे राजनेता हैं जिन्होंने अंग्रेजी के मोह में रहते हुए सम्पर्क भाषा के रूप में अंग्रेजी को स्वीकार किया।

जब तक आजादी पाने का जुनून था, हिन्दी को एक प्रतीक के रूप में स्वीकार किया गया था। आजादी के बाद इसे जुनून और प्रतीक के भावनात्मक धरातल से व्यवहार के धरातल तक लाने के लिए जो राजाश्रय आवश्यक था वह मिला नहीं, उल्टे अंग्रेजी की दुहाई होती रही। यहाँ तक कि आज अपनी देवनागरी लिपी के आकड़े भी सरकारी कामकाज में से रद्द किये जा चुके हैं जबकी संविधान में यह प्रावधान था कि पाँच वर्षों के अन्दर-अन्दर इन आंकड़ों की पुनर्स्थापना के लिये संसद या स्वयं राष्ट्रपति कोई भी उचित दिशा निर्देश करेंगे।

दूसरा बड़ा दोष मैं मानती हूँ हिन्दी साहित्यकारों का। हिन्दी के इतिहास में कहीं भी अन्य भाषाई भारतीयों के हिन्दी योगदान का मूल्यांकन और समादर किया गया, न उनका जिन्होंने हिन्दी के प्रचार कार्य में स्वतंत्रता से पहले हाथ बंटाया, न उनका जिन्होंने अपनी मातृभाषा के साथ-साथ हिन्दी में कुछ लेखन किया। आज भी कई हिन्दी साहित्यकार यह मानकर चलते हैं कि चूँकि उनका लिखा हुआ अधिक पाठकों की निगाह में आने की सम्भावना है अतएव उनका लेखन श्रेष्ठ है। अन्य भाषा में कोई लिखते हों तो कोई होंगे, नगण्य। हम क्यों उनको जानें यही रवैया देखने को मिला। हिन्दी के कितने लेखक हैं जिन्होंने जानने का प्रयास किया कि कोई बंगाल की महाश्वेता या मराठी की दुर्गा बाई भागवत या गुजराती के गुलाब दास ब्रोकर या तमिलक के जानकारी रामन क्या लिखते हैं। हाँ, विक्रम सेठा या अरुंधती राय जैसे गैर हिन्दी साहित्यकार अंग्रेजी में लिखते हैं तब हिन्दी साहित्य जगत में अवश्य उसकी चर्चा होती है।

एक जमना था जब महाराष्ट्र में आंतर भारती नामक संकल्पना का उदय हुआ। इसके अन्तर्गत मराठी

लोगों ने धडल्ले से अन्य भारतीय भाषाएँ सीखनी आरम्भ की। अधिक जोर रहा बंगाली और कन्नड का और उनकी कई रचनाएँ मराठी में अनुवादित हुई। तब तक हिन्दी भाषियों के रवैये के प्रति क्षोभ प्रकट होना शुरू हो गया और देखते-देखते मराठी लोगों ने अपनी कमजोरियों का दोष हिन्दी के सिर मढ़ना आरम्भ किया। अभिभावक दुख मनाने लगे कि उनके पाल्य जब आपस में बातें करते हैं तो हिन्दी में करते हैं, लेकिन थोड़े ही समय में चित्र पलटा और वही अभिभावक धन्यता महसूस करने लगे कि उनके पाल्य आपस में अंग्रेजी में बातें करते हैं। यानी अंग्रेजी हो गई परम सखी, भले ही उसके कारण मातृभाषा भूलती हो, और हिन्दी हो गई दुश्मन भले ही लिङ्ग्विस्टिक दृष्टिकोण से वह मराठी के नजदीक हो। यही घटनाक्रम हर राज्य में रहा, चाहे वह तमिलनाडु हो, आन्ध्रप्रदेश हो, बंगाल हो, मणिपुर हो।

अब भी यदी हिन्दी भाषा के पक्षधर अन्य भारतीय भाषाओं के सम्मान में नहीं जुटेंगे तो आने वाले दिनों में अंग्रेजी के मुकाबले सारी भारतीय भाषाओं की हार के लिए वे जिम्मेदार होंगे।

राष्ट्र भाषा का प्रश्न

डा कृष्ण कमलेश

आज से ५० वर्ष पूर्व १४ सितंबर १९४९ को हिन्दी राष्ट्र भाषा और देवनागरी लिपी राष्ट्रीय लिपी घोषित कर स्वतंत्र भारत संविधान सभा ने मानसिक स्वतंत्रता का स्वर्णिम अध्याय प्रारंभ कर दिया। भारतवर्ष जैसे बहुवर्गीय, बहुजातीय राष्ट्र में सम्पर्क सूत्र के रूप में हिन्दी का महत्व समय-समय पर उठाने वाले प्रश्न चिन्हों के होते हुए भी असंदिग्ध है।

डा. इकबाल की पंक्ति में हिन्दी शब्द में निहित व्यापकता, गरिमा और सच्चाई स्पष्ट है। राष्ट्रीय एकता के बिखरते सूत्रों में सिन्धु नदी के पूर्वी तट से लेकर बिहार तथा हिमाचल की दक्षिणी उपत्यका से लेकर ताप्ती के उत्तरीय तक फैली हुई हिन्दी ही भावनात्मक एकता और अनिवार्यता का माध्यम है।

हिन्दी के सम्बंध में सबसे बड़ी विडम्ना यह है कि इसे अपने ही घर में अजनबी बना दिया गया है और हमारी मानसीक दासता की प्रतीक अंग्रेजी भाषा कुछ व्यक्तिगत व राजनीतिक स्वार्थों के कारण हिन्दी भाषी प्रदेशों में भी लगभग सम्पर्क भाषा बनी हुई है, शासन से, धड़ल्ले से। अभिजात वर्ग में बोल-चाल और लिखी-पढ़ी की तो उसके बगैर कल्पना भी नहीं की जा सकती। लोकतन्त्र में बहुमत की आकांक्षा विरुद्ध एक खास किस्म के सुविधा भोगी समुदाय की सहूलियत के लिए अंग्रेजी को बनाए रखना खेद एवं लज्जा का विषय है। स्वतंत्रता से पूर्व देश की सुदृढ़ एकता के लिए एकमात्र सम्पर्क सूत्र हिन्दी की अनिवार्यता प्रत्येक देशवासी के सम्मुख स्पष्ट थी, किन्तु इन ५२ वर्षों में स्वार्थ पूर्ण राजनीति ने इस तथ्य को धुंधला दिया। वास्तव में हिन्दी का विरोध कुछ अंशों में ही विरोध है। यह कुछ अंश भी इसलिए है कि हम हिन्दी भाषी प्रदेश के नागरिक अपनी श्रेष्ठता के दंभ में कोई दक्षिण भारतीय भाषा सीखना भी नहीं चाहते फिर भी दक्षिण में हिन्दी के प्रचार संस्थाओं, सभाओं, हिन्दी परीक्षाओं और सामान्य व्यवहार में हिन्दी के बदले प्रयोग से यह सिद्ध है कि वह सही मंचों में हिन्दी के प्रति अनन्य उत्साह है।

हिन्दी हमारी दुर्बल महत्वाकांक्षाओं से जुड़कर रह गई है या फिर गलत हाथों में इसकी बागडोर पहुंच गई है। 'हिंदुस्तानी' जैसी संज्ञा अपने आप में कितनी व्यर्थ रही है, फिर भी इसे 'अर्थवती', 'महती', जाने क्या क्या समझा गया।

हिन्दी भाषा और मैं